© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 07 | July – September 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

समकालीन नवगीतः आधुनिक परिप्रेक्ष्य में

डा0 राममेहर सिंह, सह-प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
छोटूराम किसान स्नातकोत्तर ,महाविद्यालय,जीन्द।

नवगीत का प्रारम्भ परम्परागत गीत का विकास ही है। नई कविता के समान ही गीतों को नवगीत की संज्ञा मिली। हिन्दी में इसका विशेष महत्व है। नवगीत के समकालीन स्वरूप में नई कविता के सारे गुण मिलते हैं, चाहे कथ्य की दृष्टि से परखें या भाषा-शिल्प की दृष्टि से। गीतों की प्रेम और सौन्दर्य से युक्त रूमानी एवं कल्पनात्मक अभिव्यक्ति के पिष्टयेषण से हटकर यथार्थ तथा समकालीन संवेदना, अनौपचारिक लोकगीतों की लयात्मकता के साथ नवगीत में मुखरित हुई। मानव प्रगति का उपहार अब और अकेलेपन का कारूणिक अभिव्यक्ति इनमें मिलती है। शंभुनाथ सिंह ने नवगीत को अपने देश की जमीन और सामान्य जन से संपृक्त लोकधर्मी, लोकाश्रयी, पूर्णतः बिम्बधर्मी, आँचलिक शब्दों और मुहावरों का प्रयोक्ता कहा। इन नवगीतों में परम्परा के प्रति विद्रोह मिलने के साथ-साथ भाषा शैली की नवीनता भी मिलती है। इनमें गीत की सहजता, सरलता, लयात्मकता कमोबेश मिलती ही है, वस्तुतः इसीलिए ये गीत हैं। डॉ' बच्चन सिंह ने नवगीत के स्वरूप पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ''ग्राम गीतों के कुछ टुकड़े, गांव की भाषा, गीतों की लय आदि को पकड़ने की साथ आधुनिकता का रंग भर कर इसे नवगीत कहा जाने लगा। किन्तु नवगीतों की आन्तरिकता का तालमेल नवगीत के साथ नहीं बैठ पाता। नयी कविता ने जिस तरह या जिस सीमा तक अपनी पूर्ववर्ती काव्य-परम्परा से अपने को अलग कर नये कथ्य, नये रूप विन्यास को अपनाया है उस सीमा तक नवगीत अपनी पूर्ववर्ती गीत परम्परा से अपने को नहीं अलगा सका है। अतः प्रयास करने पर भी इसका स्वर आधुनिक नहीं बन पाता, यह प्रेम और प्रकृति के दो छोरों तक सीमित रहकर स्थगित हो गया है।''[1]

इन नवगीतों में बहुत से अंशों में प्रतीकात्मक तत्व विद्यमान है, इनमें रसात्मकता है। गीत की भांति संगीत और तुकबन्दी के प्रति आग्रह न दिखाते हुए नवगीतकारों ने ताल के प्रति विशेष रूचि दिखाई। अपने परिवेश के प्रति अत्यन्त सजग एवं संवेदनशील होने के कारण नवगीतकारों की सौन्दर्य-चेतना यथार्थपरक रही है। अधिकांश नवगीतकारों की सक्रियता, कविता, गजल, गद्य लेखन में भी रही है।

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 07 | July – September 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

नवगीत के विकास पर दृष्टिपात करते हुए यह स्पष्ट होता है कि 1958 से इसका प्रारम्भ माने जाने पर पांचवें दशक में इसका स्वरूप स्पष्ट होने लगा था, परन्तु उसके भी बहुत पहले 1936-1938 में निराला 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर', 'स्नेह निर्झर बह गया है,' 'भारति जय-विजय करे', 'जला दे जीर्ण-शीर्ण पुरातन' जैसे गीत लिख रहे थे, जो नवगीत ही हैं। नवगीत शब्द का प्रयोग कब, कैसे और कहाँ हुआ, इस पर मत-वैभिन्न्य मिलता है। डॉ. विधानचन्द्र रायम एवं डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, डां. शंभुनाथ सिंह को इसका प्रारम्भकर्ता मानते हैं। राजेन्द्र गौतम इस संदर्भ में प्रश्न करते हैं, 'नवगीत का प्रवर्त्तक कौन हैं? मेरी मान्यता है कि किसी विशेष काव्यधारा के प्रथम प्रयोक्ता की भूमिका मार्ग प्रशस्त करने की ही अधिक होती है, इसके प्रदेश का मूल्यांकन तो इस धारा के प्रभावी पुष्कलता के आकलन से ही सम्भव हो पाता है। 'नवगीत सप्तक' में सात गीतकारों-उदभ्रति, ओमप्रभाकर, ठाकुर प्रसाद सिंह, देवेन्द्र कुमार, नईम, शम्भुनाथ सिंह, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के सात-सात नवगीत संपादित हैं। इसके अतिरिक्त 'शलभ' श्रीराम सिंह, रमानाथ अवस्थी, रमेश रंजक, चन्द्रदेव सिंह, राजेन्द्र किशोर, हरीश मदानी, परमानन्द श्रीवास्तव, विजय किशोर 'मानव' आदि नवगीतकार उल्लेखनीय है। शंभुनाथ सिंह ने 'नवगीत एकादश' का सम्पादन करके इस कार्य को आगे बढ़ाया गया। सुधेश का 'गीतायन (गीत-गजल) प्रकाशक: 'कविसभा' 2001, 'ओम धीरज का प्रथम गीत संग्रह 'बेघर हुए अलाव' (अस्मिता प्रकाशन, इलाहाबाद)द्वए इंदिरा गौड़ का काव्य संग्रह 'तुलसी सहन की' आदि इस श्रृंखला की अगली महत्वपूर्ण कड़ियाँ हैं।

गीत में जनवादी चेतना डालने वाले कवियों में 'शलभ' श्री राम सिंह प्रमुख हैं। शलभ ने वर्तमान तनाव और विक्षोभ की अभिव्यक्ति में सक्षमता के लिए परम्परागत गीत शैली में परिवर्तन आवश्यक माना-

उद्भ्रांत के गीतों में मानव-मूल्यों के प्रति आकर्षण है, उनमें रागात्मकता है, जीवन की मूल संवेदना है, जैसे- 'सृजन का क्षय', 'पीले रंग की बुनाई'ए 'शहर से ऊबकर', 'मुर्दा सांझ के गीत नहीं गाते' आदि। इनमें मानव जीवन का सत्य अभिव्यंजित हुआ है। नईम, उदभ्रांत, देवेन्द्र के गीतों में परम्परा के प्रति विद्रोह का स्वर होते हुए भी रोमानियत केक प्रति सर्वथा विरक्ति नहीं मिलती है। इनमें अपने परिवेश के प्रति सचेतन अभिव्यक्ति मिलती है तथा आंचलिकता, प्राकृतिक सौन्दर्य और मानवीय संवेदनाओं की जीवंत मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। नवगीत में आंतरिक सौन्दर्यानुभूति की सहज अभिव्यक्ति मिलती है, जैसे - यहाँ से भी चलें, दो हाथ (ओम प्रभाकर)।

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 07 | July – September 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

जीवन तथा प्रकृति का सौन्दर्य-चित्रण करते हुए विविध प्रतीकों का प्रयोग नवगीतों की एक सामान्य विशेषता है। नवगीत के प्रतीक विधान को दो भागों में बांटा जा सकता है-प्रकृति से ग्रहीत तथा मिथकीय प्रतीक। प्रकृतिपरक प्रतीकों में मानव प्रकृति संबंधी एवं मानवेतर, दोनों प्रकार के प्रतीक मिलते हैं। जनजीवन (मानवी प्रकृति), मुख्यत: सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विसंगतियों को चित्रित करने वाले प्रतीकों के प्रयोग द्वारा व्यक्त किये गये हैं। महानगरीय भाग दौड़ में संवेदना कहाँ-

'यह शहर पत्थरों का पत्थरों का शहर, टूटी हुई सुबह यहाँ। झुकी हुई शाम जेलों के दफ्तर के /शापित आराम।'[2]

उच्चवर्ग की स्वार्थलिप्त अराजकता में- 'एकलव्यों के यहाँ तो राजगुरु ने/ जब लिया है यहाँ अँगूठा ही लिया है।'[3]

आर्थिक विषमता के कारण श्रम करने वाले ही भूखे रह जाते हैं-

- 'सूँघ गई रोटी की महक/भूख की रिचइया/ओ बाबा/यह रस्सी भूखे मल्लाह ने बनाई। आँतों की ऐंठ पोर-पोर उतर आई।'[4]

देश की राजनीति जंगल के कानून के समान अव्यवस्थित है-

- 'चीते, खरगोश और/भेड़िए/बोल रहे तोते की भाषा/जंगल का सारा/माहौल बदलने वाले/बनकर पास खड़े हैं/तमाशा!'[5]

पौराणिक संदर्भों से युक्त मिथकीय प्रतीकों का भी नवगीतकारों ने प्रयोग किया है- 'थोड़े से लोगों की जायदाद देश है/थोड़े से लोगों का राष्ट्र है। /भारत के माने हैं/केवल कौरव सभा/बहुमत का मलतब/धृतराष्ट्र है।'[6] यहां धृतराष्ट्र जनता के लिए प्रयुक्त हुआ है क्योंकि वह कौरवों जैसे राजनीतिज्ञों का विरोध नहीं करती है, सब कुछ सहती रहती है।

आधुनिकता की देन, त्रासद समस्याएं- ' ये नदियाँ मिलकर बहती थी/... अर्थहीन सिद्धान्त हीन/कितने छल-छन्द किए/बाढ़ लिए उन्मादों ने/ गदले सम्बन्ध किए।'[7]

प्राकृतिक दृश्यों के मनोरम प्रतीक भी मिलते हैं। इनमें प्रकृति के विविध रूप नये बिम्ब और नये प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त हुए हैं- 'मैना री /काहे का दु:ख तुझे काहे का रंज/एक बार बोल मैना री/यह पिंजरा/आनी-जानी का/प्यास में कटोरा/यह तुने चुना होना था/मटमैला/रंग तेरे पानी का।'[8]

————यहाँ पिंजरा संसार का, मैना व्यक्ति का और प्यास इच्छा का प्रतीक है।

माहेश्वरी तिवारी ने 'धूप' के प्रतीक द्वारा जीवन की कठिनाई, ऊब और उदासी का चित्रण किया - 'आओ हम धूप-वृक्ष काटें/ इधर-उधर हल्कापन बाँटें।'[9] इसी प्रकार -बर्फीले होठो पर/ शब्द

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 07 | July – September 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

ठिठुरने लगे/ नाकाफी ओढ़ने बिछौने जुड़ने लगे/रातें उजागर हुई/ दिन छौने हो गए' (उमाकान्त मालवीय) यहाँ अजगर लम्बी काली शरद की रातों और छौना जाड़ो के छोटे दिन के प्रतीक हैं। इस प्रकार नवगीत का प्रतीक विधान अधिकांशत: अत्यन्त सटीक और विवधता से सम्पन्न है।

'गीतायन' सुरेश जी की पाँचवां काव्य संग्रह है। इसमें गीत और गजल संग्रहीत है। वस्तुत: इनके गीत पारम्परिक कम, नवगीत के अधिक निकट हैं, इसीलिए यहाँ इनकी चर्चा आवश्यक हो जाती है। नज्मों, गीतों और गजल से ही इनकी काव्य-यात्रा प्रारम्भ हुई थी। ये गीतों के प्रति आलोचकों के उपेक्षा भाव के प्रति अन्यन्त आक्रामक और सजग हैं। इनके विचार से 'गीत प्रभाव सृष्टि और उपादेयता की दृष्टि से अन्य विधाओं से कम नही है, भले ही इसमें स्वरूपगत भिन्नता या अन्य विधाओं की तरह विषय-वस्तु सविस्तार वर्णन न हो।' समकालीन युग के सन्दर्भ में वे गीतों की प्रासंगिता के दो प्रमुख कारण बताते हैं। 'एक तो आज की कविता के पतन को रोकने के लिए गीत की आवश्यकता है,' 'दूसरा कारण गीत की रोमानियत का पर्याय मानने के मिथकों को तोड़ना है। यह मिथक बहुत हद तक टूटा है, पर इस दिशा में आज के गीतकार को बहुत कुछ करना है।.... आज ऐसे गीतों की कोई सार्थकता नही है जो समकालीन यथार्थ से खाली है।' (प्राक्कथन-III) इस संग्रह के पाँच खण्ड है- जीवन संगीत, एकांत संगीत, दृश्य और अदृश्य, विद्रूप और व्यंग्य, देश-वंदना। अंत में गजलें है। गीतों का प्रारम्भ नारी सौन्दर्य, वैयक्तिकता, रोमानियत और कल्पना से होकर परवर्ती गीतों में जीवन के खुरदरे अनुभवों से जुड़ जाता है:-

'दूर मुझसे हो गई है कल्पना
पास मेरे आ गई है जिन्दगी
चल रहा है नित अंधेरों का सफर
तर्क सी उलझी हुई है हर डगर
इस समय का जो घिनौना सत्य है
कह रहे हो तुम उसे फैंटसी।''

(सुधेश: गीतायन-9)

'जीवन-संगीत' खण्ड में जीवन का यथार्थ, जैसे राजनेताओं का अभिनेतापन, महँगाई, जीवन मूल्यों की उपेक्षा, सामाजिक, आर्थिक वैषम्य का गान किया गया है। साथ ही संघर्ष करने की प्रेरणा भी मिलती है-

'जिंदगी को जंग का मैदान समझो

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 07 | July – September 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

सिर्फ साँसों का नहीं यह सिलसिला है।'

'एकांत संगीत' में कवि की निजी अनुभूतियाँ, एकाकीपन, विगत स्मृतियों की पीड़ा व्यक्त हुई है।

'दृश्य और अदृश्य' खण्ड में प्रकृति के विविध रूपों के चित्र मिलते हैं, जीवन के जंगल में पगडंडी, हरे नीम, अमलताश, बादल, बरसात, झड़बेरी, कनेर, शीशम आदि सभी प्राकृतिक उपादानों के सौन्दर्य का विशिष्ट चित्रण हुआ है। इसमें प्रगतिशील भाव भी व्यक्त हुआ है कि जो श्रमजल बहता है वही क्यों भूखा है-

'हे रेशम की हरियाली
अब धनिकों की खुशहाली
क्यों सिर्फ वह भूखा है.....'

नवगीत की समस्त विशेषताओं को आत्मसात किये हुए रचनात्मक ताजगी के साथ कवि 'ओम धीरज' का प्रथम गीत-संग्रह 'बेघर हुए अलाव' (अस्मिता प्रकाशन, इलाहाबाद) सामने आया। अपने समय से पूरी तरह जुड़े हुए अनेक गीतों में समाज का समकालीन स्वरूप इस प्रकार व्यंजित हुआ है-

'दरिया की लहरों का/बदलता मिजाज है/कागज के नावों पर/बहता समाज है/पत्तों ने शाखों से/ की है बगावत फूलों-फलों में। ऐसे मरीजों का/ मर्ज लाजबाव है।'

समाज में फैले विखण्डन, विभेद, गाँव की विसंगतियों पर निरन्तर उनकी दृष्टि है। इन संबंध हीनतापरक स्थितियों के प्रति असहनशीलता के स्थान पर हमें नये सम्बन्धों की खोज मिलती है। गांव के नैतिक पतन, बदलता मौसम आदि नैराश्य को जन्म देता है, परन्तु उसके प्रति मोह भी है।

'कैसे रखे पाँव/आज हम/ घर से बाहर/हवा बह रही गर्म/ सर्द सब/ हुए चराचर/कसे शिकंजे/सिसकर मेड़।'

ठेठ देशज बिम्बों का ठाठ और संरचना की अनगढ़ता, अन्विति की चिंता न करते हुए गीत की पारम्परिक संरचना में बदलाव की प्रक्रियाओं उक्त उद्धरण में स्पष्ट हो रही है, यही सृजनात्मकता की तलाश उनकी रचनात्मक भावी संभावनाओं के प्रति आश्वस्त करती है।

इनके गीतों में एक तरफ मिथकों का सौन्दर्य है-हैण्डपम्प/पर सिमट गया है/आज गोपियों की पनघट।

दूसरी तरफ बाजारवाद की बाढ़ गांव, कस्बों, शहर के प्रकृतिगत भेद को मिटाती जा रही है।

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 07 | July – September 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

चुनावी-व्यवस्था की विसंगतियों को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा- 'पाउच के बल पर/काम की जगह बनी/जाति ही महान है/ लोकतंत्र बिक रहा/आज बिना भाव के।

निराशाजनक स्थितियों की विसंगतियां गीतकार को विचलित भी करती हैं। (सपने में नहीं आते/मन ऐसा हुआ बंजर, मन की आँखें/तन की पाँखें/खुद को नोच गई।' लेकिन यह स्थायी स्वर नहीं है। 'बेघर हुए अलगाव' में गहन जीजीविषा है जिसे आंचलिक शब्दों, कहावतों, मुहावरों के द्वारा प्रभावी धार दी गई है। इनके गीतों में रोमांस की लिजालिजी भावुकता के स्थान पर जीवन का भोगा हुआ यथार्थ है।

इनके गीतों में लय, गेयता के साथ ही सूक्ष्म सौन्दर्य बोध भी सहज रूप से मिलता है, 'बुलबुल फुदके डारी डरी/ मैना चहते चोंच संवारी/ छेड़ कोयल का मन तार/ आज प्रिय आयेंगे।'

राजनीतिक सामाजिक समस्याओं से जुड़ा स्वर भी इसी प्रकार गेयात्मकता युक्त है- बिन परिचय/ मेहमान हो गये/अनजान हो गये/ आज तुम्हारे शब्द-कोश के। परिस्थितियां बदलते ही रिश्तों की मधुरता का स्थान शब्द -बाय ले लेते हैं।

जीवन के वास्तविक अनुभवों के कारण इनमें सहज सम्प्रेषणीयता भी निर्बाध रूप से अभिव्यंजित हुई है। कवि का आत्मविश्वास बनावटी या बौद्धिक व्यायाम नहीं है, इसीलिए वह ऐलान करने का साहस करता है:- 'तुम कर लो जीवाश्म सुरक्षित/हम जीवित इतिहास लिखेंगे/ धुंधले बादल पर/ हम उज्जवल आकाश लिखेंगे।

इनमें मानवी-सरोकार है। उपरोक्त गीत-संग्रह अपनी रचनात्मक परिपक्वता की दृष्टि से प्रथम नहीं लगता है।

नवगीत का अत्यन्त प्रभावी रूप इंदिरा गौड़ के काव्य-संग्रह 'तुलसी सहन की' (समन्वय प्रकाशन, सहारनपुर) में मिलता है। इसमें अड़तीस गीत हैं। इसमें अत्यंत व्यक्तिगत भाव, अनुभवों को हृदयस्पर्शी रूप से अभिव्यक्त किया गया है। इनके गीतों में प्रेम और समर्पण रचा-बसा है। पुस्तक के फ्लैप पर गीत रचना को साधना मानते हुए लेखिका ने कहा, 'संत के समान ही ध्यान में उतरता है गीत का साधक भी, क्योंकि ध्यान जैसी ही है गीत रचना की प्रक्रिया। ... उसे प्राय: शब्द खोजने नहीं पड़ते, प्रगाढ़ से प्रगाढ़तर होती स्थिति में भी वे स्वच्छंद पारखी से स्वत: उतरते हैं। लेखिका के शब्द भी वास्तव में उसकी भावनाओं को सहज वहन करने में अन्यन्त सक्षम हैं:-

'तुमने मुझको सोचा होगा/चहकी-चहकी लगी मुझमें/ कोई बात छिड़ गई होगी/ मैं चुपके से गुजरी हूंगी/तुमने मुझको देखा होगा।

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 07 | July – September 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

अहं का पूर्ण विलयन आवश्यक है चाहे वह साधना का दी दर्प क्यों न हो, 'साधना का दर्प जब तक प्राण में हैं/ मन! तुम्हारी राम से दूरी रहेगी।' नदी के बिम्ब द्वारा लेखिका कहती है- 'अनवरत जल के परस से/रेत हो जाती है शिला/साधना से टूट जाती/दर्प की हर श्रृंखला/तो बहुत रोई नदी' सीमा पर सेनानी की लिखी चिट्ठी की भावप्रवणता श्लाघ्य है। 'बाबा खांसी से बेदम है। अम्मा गुमशुम से रहती हैं। जाने क्या गिर गया आँख में/ तुम बिन सारा घर उदास है।' इस प्रकार इनकी पीड़ा व्यक्तिगत न रहकर समष्टिगत हो गई है।

नई कविता के समानान्तर अनुभूति और संवेदना लिए हुए, नई कविता के समान ही नवगीत का आन्दोलन चला, पर इसे बहुत अधिक मान्यता नहीं मिली। इसका एक कारण आलोचकों की इसके प्रति पूर्वाग्रहयुक्त भेदभावपूर्ण वैचारिकता मानी जाती है। प्रयोगवाद के हाथों कविता नित नये प्रयोगों का माध्यम भर बनकर रह गयी थी, जिससे उसकी आत्मा भी आहत हुई तथा उसकी विकृत पहचान बनी। ऐसी स्थिति में जो कविगण सार्थक और सोद्देश्य नये कथ्य एवं शिल्प की रचनाएं कर रहे थे उनकी भी उपेक्षा होने लगी। 'अन्तराल दो' में 'शलभ' श्रीराम सिंह का मंतव्य था, 'नवगीत एक समस्या है, उसकी पूर्ति का प्रश्न बेकारी, भुखमरी और बाढ़ के सिलसिले में उठाए गए उस सवाल की तरह ही महत्त्वपूर्ण है जिसे उचित कारणों से जोड़कर बार-बार संसद भवन के मुँह में डाला जा रहा है। लेकिन संसद भवन का हाजमा इस कदर बिगड़ा हुआ है कि उसके सामने उस प्रश्न को उगल देने के सिवा कोई चारा ही नहीं है। साहित्य में खासतौर से कविता के क्षेत्र में संसद-भवनीय चरित्र वाले जनों का प्रवेश इधर बड़ी तेजी से हुआ है। वे नवगीत को अपने गले से नीचे नहीं उतारना चाहते हैं।' वस्तुतः उनका उपरोक्त वक्तव्य उन आलोचकों को दिया गया करारा जवाब है, जो यह मानते हैं कि 'इस आन्दोलन में मुख्य रूप से वे लोग शरीक हुए जो नई कविता नहीं लिख पाते थे या नई कविता में विफलता प्राप्त करने के उपरान्त पुराने गीत-लोक में लौटने के लिए बाध्य थे।'[8]

रामकुमार 'कृषक' नवगीत, गजल, जनगीत के माध्यम से लगातार आम आदमी की दुरावस्था पर उसी की माथा में लिख रहे हैं। काव्य-संग्रह 'लौट आएंगी आँखे' कवि श्री रामकुमार कृषक के आवरण-पृष्ठ पर इनके विषय में श्री विष्णुचन्द्र शर्मा लिखते हैं, 'कवि न गीत-संवेदना को नकारता है, न आधुनिक त्रासदी से मुँह मोड़ता है। ... शहर और गांव के बीच उसकी कविता में जो खंडित बिम्ब बिखरे नजर आते हैं, वही आज के इंसान की सच्चाई है।' साथ ही 'कृषक का कवि टॉपिकल दोयम लिखने वाले शहरी कवियों के मुकाबले मर्मस्पर्शी जीवन यथार्थ और उसके सहज स्वीकार का कवि है। उनकी कविताओं में आम आदमी की 'त्रासदीय छटपटाहट', 'गहरी और आत्मीय कुब्वत' के

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 07 | July – September 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

साथ व्यक्त हुई है। इतने सशक्त कवि को भी लिखना पड़ा, 'कवि नहीं लिखता कविताएँ/ लिखता है आलोचक/आलोचना में होती है कविता/कविता से बड़ी होती है उसकी कलम/ सात समन्दरों की स्याही पीकर/चुप्पी में हाहाकार/हाहाकार में चुप्पी।''

डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय के शब्दों में, 'आज का गीतकार वैयक्तिक सुख-दु:ख की अभिव्यक्ति के लिए अधीर है, व्याकुल हैं, बेचैन है और उसमें स्पर्श सुख की तीव्र लालसा है। वह भोगानन्द बेचैन है और उसमें स्पर्श सुख की तीव्र लालसा है। वह भोगानन्द का आकांक्षी, विश्वासी एवं अभिलाषी है। लघुता का आत्मबोध, जागरूकता, संघर्षशीलता एवं कुछ पाने की प्रबल इच्छा उसे नित्य व्याकुल किए हुए है। यही कारण है कि व्यष्टिगत धरातल के समष्टिगत की यात्रा उसे पीड़ित करके गीत गाने को बाध्य करती है।'

आज शैलीगत नव्यता के साथ जीवन के प्रति असीम आस्था को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करते हुए 'नवगीत' अपनी अलग पहचान बना चुका है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ० बच्चन : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, 1986, पृ. 339
2. डॉ० शांति सुमन: ओ प्रतीक्षित, पृ. 39
3. रमेश रंजक: हरापन नहीं टूटेगा, पृ. 66
4. अनूप अशेष: लौट आएंगे सगुन पंछी, पृ. 11
5. माहेश्वर तिवारी : हरिसिंगार कोई तो हो, पृ. 77
6. उमाकान्त मालवीय: सुबह रक्त पलाश की , पृ. 50
7. डॉ. अनिल कुमार तिवारी 'मदन'
8. अनूप अशेष: लौट आएंगे सगुन पंछी, पृ. 21
9 माहेश्वर तिवारी: हरसिंगार कोई तो हो, पृ.10
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास: डॉ. बच्चन 1986, पृ. 339
11. अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियां, 2000, पृ. 150